सूर्य–नमस्कार का सांस्कृतिक महत्त्व

डॉ0 अनामिका सिंह*

भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम रूप वैदिक है। इसका मुख्य आधार वेद हैं। वेदों में जो धर्म, दर्शन, तन्त्र, कला, शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान आदि विविध विषय समाहित हैं वस्तुतः वे ही भारतीय संस्कृति के मूलाधार हैं। इन विविध विषयों के अतिरिक्त 'सृष्टिविज्ञान' भी वेदों का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। 'सृष्टिविज्ञान' के सूक्त देवताओं को सम्बोधित करके रचे गए हैं। देवताओं का अर्थ वहाँ दिव्यशक्ति से सम्पन्न तत्त्व है–दीव्यन्तीति देवाः। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशादि सभी प्राकृतिक शक्तियाँ वेदों में, देवताओं की संज्ञा से सुशोभित हैं। वेदों का सबसे शक्तिशाली देवता 'इन्द्र' है किन्तु अन्य देवताओं के साथ 'सूर्य' को भी एक विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है।

1.वैदिक संस्कृति में सूर्य का स्थान

वैदिक संस्कृति, देवसंस्कृति है। वैदिक देवमण्डल को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– (1) आकाशस्थानीय देवता (2) अन्तरिक्षस्थानीय देवता (3) पृथ्वीस्थानीय देवता। आकाशस्थानीय देवताओं में 'सूर्य' एक प्रमुख शक्तिशाली देवता के रूप में प्रतिष्ठित है।

ऋग्वेद में 'सूर्य' को चौदह सूक्त समर्पित हैं। इन सूक्तों में उसके विशद स्वरूप की विविध प्रकार से व्याख्या करते हुए कहा गया कि–

ओघ्म् चित्रं देवनामुदगादनींक चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्पा जगतस्तस्थुषश्च।। (ऋग्वेद,1)

आर्थात् प्रकाशमान रश्मियों का समूह देवगण सूर्यमण्डल के रूप में उदित होता है। यह मित्र, वरुण, अग्नि, और सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र हैं। इन्होंने उदित द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष सभी को अपने दैदीप्यमान तेज से सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है। सूर्य अन्तर्यामी होने के कारण सबके प्रेरक परमात्मा हैं तथा जंगम व स्थावर सृष्टि के आत्मा हैं।

संसार दिन और रात के विभाग में आबद्ध है। इनमें दिन का देवता मित्र है तथा रात्रि का वरूण। जगत् इनसे ही उपस्थित होता है।'सूर्य' वस्तुतः दोनों देवताओं के तथा जगत् के प्रकाशक व प्रेरक हैं। दूसरे शब्दों में, दिन और रात का

दर्शनशास्त्र विभाग, आर्य महिला पी0जी0 कॉजेज वाराणसी

यह विभाग सूर्य से ही होता है– तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं .णुते द्योरुपस्थे। (ऋग्वेद, सूर्यसूक्त)

यह 'सूर्य' की महिमा का महात्म्य ही है कि वह अपनी फैलाई हुई इन रश्मियों को बिना परिश्रम के तत्काल उपसंहृत कर लेते हैं। अन्यथा उनके इस स्वातन्त्र्य व शक्तिबल को समेट लेना बड़े–बड़े देवताओं के सामर्थ्य के परे है। संक्षेप में, 'सूर्य' का यह सामर्थ्य ही, उनका देवतत्व अथवा ईश्वरत्व है–

तत् सूर्यस्य देववत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सदस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै।। (वही)

'सूर्य' स्वयंभू हैं। इस सौरजगत् में श्रेष्ठ हैं (स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वचौदाअसि वर्चो मे दहि सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते/(यजुर्वेद, 2/26)। आकाशमण्डल में हमें एक 'सूर्य' के ही प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं किन्तु वास्तव में 'सूर्य' असंख्य और अनंत हैं– ऐसे भी हमें प्रमाण मिलते हैं (तैत्तिरीय आरण्यक, 1/2/7)। प्रत्येक ब्राह्मण की केन्द्रशक्ति और उसका अपना एक पृथक् 'सूर्य' है। सूर्याक नामक आरण्यक इनमें से आठ 'सूर्य' के प्रत्यक्ष प्रमाण की पुष्टि भी करता है। इन आठ सूर्यों के नाम हैं–आरोग, भाज, पटर, पतंग, स्वर्णर, ज्योतिमान,विभास और कश्यप। हम नित्यप्रति आँखों से जिस 'सूर्य' को देखते हैं, उसका नाम 'आरोग' है। शेष सभी सूर्य अत्यन्त दूर हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद, 1/35/8 मन्त्र में कहा गया है कि 'सूर्य' आठों दिशाओं को प्रकाशित करता है अर्थात् प्रत्येक दिशा एक–एक 'सूर्य' से सम्बन्धित है।

(i)-सूर्य–साधना और धर्म–'सूर्य' का अन्तरिक्ष में भ्रमण, प्रातः से सायंकाल तक उदय–नियम, चन्द्रमा की स्थिति, राशि–विवरण आदि कई ऐसे परिवर्तन हैं जो 'सूर्य' के मुखापेक्षी हैं। श्रुति कहती है–यद् द्याव इन्द्र ते शतशतं भूमिः। उतस्युः न त्वा वज्निन्सहस्रसूर्याः।अनु न जातमष्ट रोदसी–इति, (1/76)।

अर्थात् हे इन्द्र! यद्यपि तुमसे शत–शत लोकों का निर्माण सम्भव है, सैकड़ों भूलोकों का सृजन सम्भव है, तथापि आकाश में स्थित सहस्रों 'सूर्य' के प्रकाश को पूर्णतया तुम और तुमसे निर्मित स्वर्गादि लोक मिलकर भी नहीं ले सकते। इसका तात्पर्य यही है कि 'सूर्य' को उसकी इस महत्ता के कारण देवताओं के दिव्य नायक अथवा पुरोहित के रूप में श्रुति उपस्थापित करना चाहती है–मह्म देवानामसुर्यः पुरोहितः, (ऋग्वेद, 10/8/1)।

पुनः श्रुति (शतपथब्राह्मण) द्वारा सूर्यमण्डल को त्रयीविद्यामय बताना और यह कहना कि त्रयीविद्या सूर्यरूप से तप रही है–यदेतन्मण्डलं तपपि तन्महदुक्थम् ...अथ य एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोघग्निः।... सैषा ष्यैव विद्या तपसि... का भावार्थ यही है कि तीनों वेद ज्ञानरूप हैं। अर्थात् ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हैं। उसी प्रकार इस ज्ञान का प्रतीक 'सूर्य' भी अपने स्तर पर अपनी विविध कलाओं के माध

यम से जड़–चेतन जगत् को नियन्त्रित, संचालित व आलोकित कर रहा है। अतएव 'वैदिक संस्कृति ज्ञान की संस्कृति है, सूर्य की संस्कृति है।' वैदिक ऋषि जब यह कहते हैं कि–न ही ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। अर्थात् ज्ञान से बढ़कर पवित्र और कुछ भी नहीं है तो इसका अर्थ है कि 'सूर्य' से बढ़कर पवित्र और कुछ भी नहीं है। ऐसे 'सूर्य' के प्रति आस्था, निवेदन व प्रणति है। इस प्रणति को भारतीय संस्कृति में अथवा वैदिक संस्कृति में जिस नाम से पहचाना जाता है वह है –सूर्य–नमस्कार।

यह 'सूर्य–नमस्कार' वैदिककाल के मनीषियों की देन है। प्राचीनकाल में दैनिक कर्मकाण्ड के रूप में 'सूर्य' की नित्य आराधना की जाती थी क्योंकि यह आध्यात्मिक चेतना का एक शक्तिशाली प्रतीक है। बाह्य तथा आन्तरिक 'सूर्य– उपासना' का लक्ष्य पकृति की उन शक्तियों को अनुकूल बनाना था जो मनुष्य के नियन्त्रण की सीमा से बाहर थीं। यह पद्धति उन आत्मज्ञानियों द्वारा विकसित की गई जिन्हें यह पता था कि 'सूर्य–नमस्कार' का सीधा सम्बन्ध मानव–जीवन से है और इसकी साधना जीवन को प्रत्येक स्तर पर लाभान्वित करती है।

2. सूर्य–साधना और उसका प्रभाव

भारतीय सनातन धर्म भगवान् 'सूर्य' की महिमा एवं प्रकाश से अनुप्राणित तथा आलोकित है। **'सूर्य'** की महिमा अद्वितीय है। 'सूर्य' हमारी उपासना का मूल बिन्दु है। **महाभारत (30/3/30–31) में 'सूर्य'** को समस्त चराचर जगत् का धाता–पाता –संहर्ता एवं देवविशेष के रूप में स्थापित करते हुए सूर्योपासना के नियम व उसकी उपासना से मिलने वाले लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि **'सूर्य'** के अष्टोत्तर नामों में से 'कामद' व 'करुणान्वित' की पूजा से इच्छाओं की पूर्ति, प्रजाद्वार से संतान की प्राप्ति और मोक्षद्वार से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति **'सूर्य'** के इन एक सौ आठ नामों का नित्य पाठ करता है, वह स्त्री, पुत्र, धन, रत्न, पूर्वजन्म–स्मृति, धृति, बुद्धि, विशोकता, इष्टलाभ और भयमुक्ति प्राप्त करता है–

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् स पुत्रदारान् धनरत्नसंचयान्।
लभेत जातिस्मरता। नरः सदा धृतिं च तेधां च स विन्दते पुमान्।
इमं स्तपं देववरस्य यो नरः प्रकीर्तयुच्छुचिसुमनाः समाहितः।
विमुच्चते शोकदावाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान्।।

ब्रह्मपुराण (29/61) में सूर्योपासना के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि 'सूर्य' की .पा से मनुष्य के वाचिक, मानसिक व कायिक पाप निःशेष हो जाते हैं तथा मनोवांछित फल प्राप्त होते हैं। साथ ही यह भी कहा गया है कि भगवान् 'सूर्य' के एक दिन के पूजन से जो लाभ प्राप्त होता है वह शास्त्रोक्त दक्षिणा से युक्त सैकड़ों यज्ञों के अनुष्ठान से भी नहीं मिल सकता–

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दृष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति।।
x x x x
एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि।।

'सूर्योपासना' के बिना कोई भी मानव किसी शुभ कर्म का अधिकारी नहीं बन सकता। वर्णाश्रम धर्मों के अनुसार सन्ध्योपासना तथा गायत्री का अनुष्ठान करने की अनिवार्यता व महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि– उषा, मध्याह्न व सायं तीनों कालों में गायन्त्री मन्त्र द्वारा 'सूर्य' का चिन्त्य करने वाले साधक को अभ्युदय एवं निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति होती है–

यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मगोचराः।
प्रेरयेत्, तस्य यद् भर्गः तद्वरेव्यमुपास्महे।। (बृहद्योगियाज्ञवल्क्य)
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटीहारी हिरण्मयवपुर्धृशंखचक्रः।।
(बृहत्पाराशरस्मृति)

संक्षेप में, जीवात्मा, परमात्मा का अंश है। अपने इस वास्तविक स्वरूप को पहिचानने का एकमात्र उपाय भगवान् की कृपा को पा लेना है। भगवान् की यह कृपा तभी मिलेगी जब हम बाह्य संसार से उपरत होकर परमात्मस्वरूप से उस **'सूर्य'** की उपासना करें। अनादिकाल से ऋषि–मनीषियों ने **धार्मिक दृष्टि** से 'सूर्योपासना' कर अपने जीवन को धन्य बनाया है।

(ii)सूर्य–साधना और दर्शन

दार्शनिक दृष्टि से **'सूर्य'** के तत्त्वमीमांसीय विवेचन को वउसकी महत्ता को भिन्न–भिन्न शास्त्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार से रेखांकित किया गया है। यथा–विश्व के मूल में दो तत्त्व सम्मिलित हैं– अग्नि और सोम। यह जगत् अग्नि और सोम तत्त्व के योग से बना है–

अग्नीसोमात्मकं जगत्। यहाँ अग्नि, 'सूर्य' का तथा चन्द्रमा सोम का प्रतीक है। समस्त सांसारिक पदार्थ इनके संयोग का प्रकाशन है।

इसी प्रकार **मुण्डक उपनिषद्** (2/1/5) भी अग्नि अर्थात् आदित्य व सोम से जगत् की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि– परमेश्वर से अग्नि का उद्भव हुआ, अग्नि की समिधा आदित्य है। इनसे सोम की उत्पत्ति हुई। सोम से पर्जन्य, पर्जन्य से नाना प्रकार की औषधियाँ, औषधियों से शक्ति पाकर जीव–संतानें हुई।

बृहदारण्यक उपनिषद् (1/2/1–3) में इस सत्य का भिन्न स्वरूप को उद्घाटित करते हुए कहा गया है कि– सृष्टि के दो प्रकार हैं– (1) शुद्ध, (2) अशुद्ध,। इनमें अर्क सृष्टि शुद्ध है और यह तेज, वायु और प्राण में विभक्त है। यह सृष्टि शाश्वत है। इसके अतिरिक्त आदित्य से संवत्सर हुआ। संवत्सर ओर वाक् से व्युष्टि या मिथुन–प्रक्रिया द्वारा जो सृष्टि उत्पन्न हुई वह अशुद्ध है। आशय यही है कि संसार की व्युत्पत्ति के मूल में भी 'सूर्य' की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

(iii) सूर्य–साधना और विज्ञान

वैज्ञानिक दृष्टि से इस, तथ्य का विश्लेषण करते हुए 'सूर्य' को एक अग्निपिण्ड की संज्ञा दी गई है। यह अग्निपिण्ड काला है–आकृष्णेन रजसावर्तमानः यजुर्वेद। इस कृष्ण अग्निमय सूर्यपिण्ड में ज्योतिप्रकाश सोम की आहुति से उत्पन्न होता है। अर्थात् प्रकाश अग्नि और सोम इन दोनों के परस्पर सम्मिश्रण का फल है। भगवान् 'सूर्य' की अनन्त रश्मियाँ हैं जिनमें सात प्रमुख हैं। इन सात प्रमुख रश्मियों के आधार पर ही सात रस, सात रूप और सात धातु प्रतिष्ठित हैं।

(iv)सूर्य–साधना और कालविज्ञान

कालविज्ञान की दृष्टि से भी 'सूर्य' एक महत्त्वपूर्ण घटक है। 'सूर्य' का नाम कालाध्यक्ष है। 'सूर्य' कालचक्रप्रवर्तक है। कृता, त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सर, दिन, रात्रि, याम, क्षण, कला, काष्ठा–महूर्तरूप समय– ये सभी 'सूर्य' के ही नाम हैं। 'सूर्य' के कारण ही हम समय के इन खण्डों का अनुभव करते हैं। कालमान के जाननेवाले विद्वानों ने इसका आदि और अन्त 'सूर्य' को ही बताया है (महाभारत, 3/3/55)।

विभिन्न ग्रहों के नाम 'सूर्य' के अष्टोत्तर नामों के अन्तर्गत् हैं। यथा–सूर्य, सोम, मंगल, (अंगारक), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैचर (महाभारत, 3/3/17–18)। दूसरे शब्दों में, काल व ग्रहों की स्थिति का अध्ययन करने वाले ज्योर्तिविज्ञान के केन्द्र में भी सूर्य अधिष्ठित हैं।

(v) सूर्य–साधना और शरीरविज्ञान

शरीरविज्ञान की दृष्टि से भी 'सूर्य' अथवा 'सूर्यचक्र' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। मानव–शरीर में आध्यात्मिक शक्ति के जागरण एवं संचालन के आठ केन्द्र हैं। इनमें एक महत्त्वपूर्ण चक्र 'मणिपूरक' (सूर्यचक्र) है। यह सूर्यचक्र (नाभिकेन्द्र) प्राण का उद्गम स्थान होने के साथ–साथ अचेतन मन के संस्कारों तथा चेतना का सम्प्रेषण केन्द्र भी है। किन्तु साधारण मनुष्यों का यह महत्त्वपूर्ण केन्द्र प्रायः सुप्तावस्था में पड़ा रहता है। आध्यात्मिक शक्ति के जागरण के लिए इस सूर्य 'सूर्यचक्र' का जाग्रत होना आवश्यकत है। अग्नितत्त्वप्रधान इस 'मणिपूरक चक्र' को सक्रिय करने के लिए 'सूर्य–नमस्कार' की साधना–पद्धति

अपनाई जाती है। इसमें कुछ आसनों–प्रणमासन, हस्तउत्तानासन, पादहस्तासन, अश्वसंचालनासन, पर्वतासन, अष्टांगनमस्कार, भुजंगासन, प्राणायामों द्वारा बारह मन्त्रों के उच्चारण के साथ 'सूर्यचक्र' में पीले चमकीले रंग के कमल के मानसिक ध्यान की प्रक्रिया बताई गई है। ततः चेतना को 'सूर्यचक्र' में अधिष्ठित करने का प्रयास किया जाता है। परिणामस्वरूप साधक का शरीर और मन पुष्ट होता है तथा शनैः शनैः अभ्यास की परिपक्वता के बाद उसकी कुंडलिनी–शक्ति जाग्रत् हो जाने के कारण वह आध्यात्मिक लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकता है– ऐसा कहा गया है।

निष्कर्ष–उक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक शक्तिरूप 'सूर्य' को दिव्य स्थान प्रदान करते हुए उसे मनुष्य के समग्र जीवन का आधार बताया गया है। जिस प्रकार सर्वं खलु इदं बह्म वेदान्त के महावाक्यानुसार एक ही शक्ति सृष्टि में आद्यन्त प्रकाशित है और उस शक्ति के प्रति व्यावहारिक नमन उस पारमार्थिक सत्ता को व्यवहार से जोड़ने का एक प्रयत्न है। उसीप्रकार 'सूर्य–नमस्कार' भी पारमार्थिक शक्ति को व्यवहार से जोड़ने का एक प्रयत्न है। दूसरे, इस नमस्कारके द्वारा हम किसी दूरस्थ नक्षत्र को नमस्कार न कर, स्वयं को उस पूर्णआमतत्त्व का दिव्य स्वरूप मानकर नमस्कार करते हैं। जीवन और जगत् के प्रति दिव्य दृष्टि रखना और उस दिव्यता का प्रतीक स्वयं को मानकर–स्वयं को नमस्कार करना भारतीय संस्कृति की विलक्षणता है।